

भारतीय ज्ञान परंपरा

संस्कृति, दर्शन, शैक्षिक विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा :

संस्कृति, दर्शन, शिक्षा विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

मो. 9660111549

संस्करण :

प्रथम 2022-2023

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 64 - 6

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

30. वेदोत्पन्न प्राचीन भारतीय शारीरिक व्यायाम संस्कृति

अनुराग पाण्डेय

शारीरिक शिक्षक

हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय संस्कृति का मूलभूत आधार 'समग्रता' में निहित है। यहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को शरीर, मन और आत्मा, इन तीनों के संतुलन से देखा गया है। शरीर को केवल भौतिक अस्तित्व नहीं, बल्कि साधना का उपकरण माना गया। इसीलिए कहा गया —

‘शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।’

अर्थात्, शरीर ही धर्म पालन का प्रथम साधन है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए शरीर का स्वस्थ और सुदृढ़ होना अनिवार्य है।

वेदों में बार-बार इस बात पर बल दिया गया है कि मनुष्य का जीवन तभी सार्थक है जब उसका शरीर बलवान, चित्त प्रसन्न, और आत्मा संयमित हो। इस प्रकार वेद केवल अध्यात्म या दर्शन के ग्रंथ नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन-विज्ञान के महामूल स्रोत हैं। उन्हीं से भारतीय शारीरिक व्यायाम संस्कृति की उत्पत्ति हुई।

वेदों में 'व्यायाम' का सीधा उल्लेख यद्यपि आधुनिक शब्दों में नहीं मिलता, किन्तु यज्ञ, तप, ब्रह्मचर्य, आराधना, सूर्योपासना, योग, बल, वीर्य, आयु, ओजस्, प्राण, तेजस् जैसे शब्द इस ओर संकेत करते हैं कि वेदकालीन मानव अपने शरीर की शक्ति, स्थैर्य, लचीलापन और सहनशीलता को उच्च मूल्य के रूप में देखता था।

वेदों में वर्णित यह परंपरा केवल देह-संवर्धन तक सीमित नहीं, बल्कि एक ऐसी जीवन-शैली थी जो शरीर के माध्यम से आत्मा के शुद्धिकरण का मार्ग प्रशस्त करती थी।

वेदों में शारीरिक स्वास्थ्य और बल की अवधारणा

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद — इन चारों वेदों में शरीर और बल का वर्णन विविध रूपों में मिलता है। ऋग्वेद (1/89/9) में कहा गया है—

‘तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।’

यह केवल मानसिक पवित्रता की बात नहीं है, बल्कि शारीरिक और मानसिक

सामंजस्य का भी प्रतीक है।

वेदों में स्वास्थ्य को 'स्वस्थ' शब्द से व्यक्त किया गया, जिसका अर्थ है — 'स्व' में स्थित रहना। अर्थात्, जब शरीर, प्राण और मन अपने स्वभाविक सामंजस्य में स्थित हों, तभी व्यक्ति 'स्वस्थ' कहलाता है।

यजुर्वेद (34/1) में देवताओं की उपमा देकर कहा गया है—

‘यथा देवा अदितिं विश्वरूपामनपगतां शृण्वाम स्वस्तये।’

देवता जो अखंड, शक्तिशाली, चिरंजीवी हैं — मनुष्य को भी वैसे ही स्वास्थ्य और सामर्थ्य प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अथर्ववेद (6/120/2) में प्रार्थना की गई है—

‘बलं मे तन्वन् क्रुधि।’

हे प्रभु! मेरे शरीर में बल उत्पन्न कर।

यहां 'बल' केवल मांसपेशियों की शक्ति नहीं, बल्कि जीवनीशक्ति, उत्साह और सहनशीलता का भी बोध कराता है।

वेदों में 'वीर्य' शब्द का उपयोग बार-बार हुआ है, जो केवल प्रजनन या युद्धक बल का द्योतक नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवनीशक्ति, उत्साह और कर्मयोग की स्थिति का द्योतक है।

वेदकालीन मनुष्य और कर्मयोग की भावना

वेदकालीन आर्य जीवन कर्ममय था। उस समय का व्यक्ति खेतों में, युद्धक्षेत्र में, तपोवन में, यज्ञमंडलों में और शिक्षा केंद्रों में कर्मशील था। वह जानता था कि निष्क्रियता मृत्यु के समान है —

‘नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।’

अर्थात् निर्बल व्यक्ति आत्मा का भी दर्शन नहीं कर सकता।

ऋग्वेद में 'कर्म' को सर्वोच्च कहा गया है। यजुर्वेद (40/2) में स्पष्ट कहा गया है—

‘कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।’

मनुष्य को सौ वर्षों तक कर्म करते हुए जीने की इच्छा करनी चाहिए। यह कर्म ही व्यायाम है, यह जीवन की गति है।

इस प्रकार वेदकालीन व्यक्ति के लिए व्यायाम केवल क्रीड़ा नहीं, बल्कि धर्म था। कर्मयोग, यज्ञ और तप — ये तीनों ही शारीरिक व्यायाम के अंग थे।

यज्ञ और व्यायाम का वैज्ञानिक संबंध

यज्ञ केवल अग्नि में आहुति देना नहीं था। यह एक शारीरिक अनुशासन था।

यज्ञकर्ता को स्नान, संयम, उपवास, ध्यान, जप और अग्निकर्म के लिए विशेष क्रियाएँ करनी पड़ती थीं। इन सभी में शरीर की सक्रियता, श्वास-प्रश्वास का नियंत्रण और मन की एकाग्रता आवश्यक होती थी।

‘अग्निहोत्र’ का अर्थ ही है शरीर और प्राण की शुद्धि। जब यजमान अग्नि में आहुति देता था, तो वह अपने भीतर की आलस्य, रोग और मानसिक जड़ता को भी जलाता था।

वेदों में अग्नि का संबंध प्राण से जोड़ा गया है —

‘अग्निर्वै प्राणः ।’

अर्थात्, शरीर में जो ऊष्मा और ऊर्जा है, वही अग्नि है। अतः यज्ञकर्म का उद्देश्य शरीर की ऊजाओं को संतुलित करना और आंतरिक व्यायाम के माध्यम से स्वास्थ्य को बनाए रखना था।

सूर्योपासना और व्यायाम परंपरा

सूर्य वेदों के प्रमुख देवता हैं। ऋग्वेद (1/50) में कहा गया है—

‘उद्वयं तमसस्पिरि ज्योतिष्यन्त उत्तरे ।’

सूर्य अंधकार को दूर कर प्रकाश देता है। यह प्रतीकात्मक रूप से शारीरिक और मानसिक आलस्य के नाश का बोध कराता है।

वेदकालीन लोग प्रातःकाल स्नान कर सूर्य के प्रति प्रार्थना करते हुए सूर्यनमस्कार की मुद्रा में आसन करते थे। सूर्यनमस्कार की बारह मुद्राएँ – प्रणामासन, हस्तउत्तानासन, पदहस्तासन आदि शरीर के सभी अंगों को सक्रिय करती हैं।

अथर्ववेद में सूर्य को कहा गया है—

‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।’

अर्थात्, सूर्य सम्पूर्ण जीवों का आत्मा है। सूर्योपासना से प्राण, ओजस्, बल और दीर्घायु प्राप्त होती है। इस प्रकार सूर्यनमस्कार भारतीय व्यायाम संस्कृति का सबसे प्राचीन और वैज्ञानिक रूप है।

योग और व्यायाम का वेदोत्पन्न संबंध

‘योग’ शब्द का मूल ‘युज्’ धातु है, जिसका अर्थ है ‘मिलाना’। योग का उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा का एकीकरण है।

ऋग्वेद में कहा गया है—

‘मुनयो वातरशनाः पिशंगवाससः ।’ (10/136)

अर्थात्, वे मुनि वायुवत् गतिशील हैं, जो तप और संयम से दीप्त हैं। यहाँ मुनियों की गतिशीलता और स्फूर्ति योग-व्यायाम की साधना का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

वेदों में ‘प्राणायाम’ का भी संकेत मिलता है। प्राण का नियंत्रण केवल ध्यान

के लिए नहीं, बल्कि शरीर के संतुलन हेतु भी आवश्यक था। इसलिए बाद के ग्रंथों – पतंजलि योगसूत्र, हठयोग प्रदीपिका आदि ने जिस योगव्यायाम का प्रतिपादन किया, उसका बीज वेदों में पहले से विद्यमान था।

ब्राह्मण ग्रंथों में शारीरिक अनुशासन

ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञकर्म के प्रत्येक चरण के साथ शारीरिक अनुशासन को अनिवार्य बताया गया है।

शतपथ ब्राह्मण (11/5/7) में कहा गया है—

‘शरीरं तु यज्ञस्य पात्रम्।’

अर्थात्, शरीर ही यज्ञ का पात्र है। इसका अर्थ यह है कि शरीर को अशुद्ध, जड़ या दुर्बल नहीं रहने देना चाहिए।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि आचार्य और शिष्य दोनों को यज्ञ के समय शुद्ध, संयमी और सक्रिय रहना चाहिए। यह अनुशासन व्यायाम का ही दूसरा रूप था।

उपनिषदों में बल और विद्या का समन्वय

उपनिषदों में बल, तप और ज्ञान को एक-दूसरे का पूरक माना गया है। छांदोग्य उपनिषद (7/26) में कहा गया है—

‘बलं विद्या च नान्यतरं प्राप्यं।’

अर्थात्, बल और विद्या दोनों में से किसी एक की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कठोपनिषद में कहा गया है—

‘नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।’

अर्थात्, आत्मा निर्बल व्यक्ति द्वारा प्राप्त नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि आत्मज्ञान के लिए भी शारीरिक बल आवश्यक है।

अर्थात्, वेद और उपनिषद दोनों ने शरीर की शक्ति को आत्मज्ञान के लिए अनिवार्य साधन माना है।

आयुर्वेद में व्यायाम का वैज्ञानिक प्रतिपादन

चरकसंहिता (सूत्रस्थान 7/31) में कहा गया है—

‘व्यायामात् लाघवं बलम् आरोग्यं च लभ्यते।’

अर्थात्, व्यायाम से हलकापन, बल और आरोग्य प्राप्त होता है।

सुश्रुतसंहिता (चि. 24/52) में व्यायाम के लक्षण बताए गए हैं —

‘शरीरस्य स्निग्धता, स्थैर्य, दीर्घश्वास और पसीने का निकलना व्यायाम की उचित सीमा का संकेत है।’

आयुर्वेद ने यह भी कहा है कि अत्यधिक या अल्प व्यायाम दोनों ही हानिकारक हैं। अतः व्यायाम की विधि, काल और व्यक्ति की प्रकृति (वात, पित्त, कफ) के

अनुसार निर्धारित की गई है। यह स्पष्ट करता है कि भारतीय व्यायाम केवल बाह्य परिश्रम नहीं, बल्कि वैज्ञानिक शरीर-संवर्धन पद्धति थी।

रामायण और महाभारत में व्यायाम परंपरा

रामायण में वर्णित राम और लक्ष्मण बचपन से ही गुरुकुल में ऋषि-विश्वामित्र के निर्देशन में शारीरिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। वे धनुर्विद्या, दौड़, तैरना, निशानेबाजी, तप और संयम में निपुण बनते हैं।

महाभारत में पांडव और कौरव दोनों गुरु द्रोणाचार्य के अधीन धनुर्विद्या, गदायुद्ध, रथचालन, कुश्ती और युद्धनीति का अभ्यास करते हैं। भीम और दुर्योधन का मल्लयुद्ध भारतीय व्यायाम संस्कृति का श्रेष्ठ उदाहरण है।

महाभारत में कहा गया है—

‘बलं धर्मस्य मूलं।’

अर्थात्, बल ही धर्म का मूल है। निर्बल व्यक्ति धर्मरक्षा नहीं कर सकता। यहां बल का तात्पर्य केवल शारीरिक शक्ति नहीं, बल्कि मानसिक साहस और नैतिक सामर्थ्य से भी है।

नाट्यशास्त्र और व्यायाम का सौंदर्यशास्त्र

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र व्यायामशास्त्र का भी ग्रंथ है। इसमें शरीर के प्रत्येक अंग, उपांग, गति, मुद्रा, आसन, नृत्य, और भावाभिव्यक्ति के लिए अभ्यासों का वर्णन है। ‘अंगहार’ और ‘रेचक’ जैसे व्यायाम शरीर की लचीलापन, शक्ति और नियंत्रण बढ़ाने के लिए किए जाते थे।

नृत्य और व्यायाम दोनों में समानता यह है कि दोनों ही लय, ताल और गति पर आधारित हैं। इस प्रकार भारतीय व्यायाम केवल युद्ध या स्वास्थ्य का साधन नहीं, बल्कि कला और सौंदर्य का भी अंग था।

आश्रम व्यवस्था और व्यायाम का अनुशासन

भारतीय जीवन-व्यवस्था में ब्रह्मचर्याश्रम से ही शारीरिक अनुशासन प्रारंभ हो जाता था। गुरुकुल के छात्र प्रातःकाल स्नान, सूर्योपासना, शारीरिक क्रीड़ा, धनुर्विद्या, दौड़, तैरना और श्रम करते थे। इससे उनमें न केवल शक्ति, बल्कि संयम, अनुशासन और सहनशीलता का विकास होता था।

गृहस्थाश्रम में कर्मयोग के माध्यम से शरीर का उपयोग समाज सेवा में होता था। वानप्रस्थ और संन्यास में योग, ध्यान और तप के द्वारा शरीर की ऊजाज का रूपांतरण होता था। इस प्रकार चारों आश्रमों में व्यायाम किसी न किसी रूप में विद्यमान था, यह भारतीय जीवन का अनिवार्य अंग था।

क्रीड़ा, युद्धकला और व्यायाम

वेदकालीन समाज में क्रीड़ा और युद्धकला दोनों व्यायाम के माध्यम थे। ऋग्वेद में रथयात्रा, अश्वारोहण, गजरुद्ध, दौड़, मल्लयुद्ध, जलक्रीड़ा का वर्णन मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजकुमारों को मल्लविद्या, धनुर्विद्या, अश्वगति, गजारोहण, जलक्रीड़ा, और शस्त्रकला में निपुण होना अनिवार्य बताया गया है।

‘क्रीड़ा’ शब्द स्वयं ‘कृत्य’ धातु से बना है, जिसका अर्थ है—‘गतिशीलता’। अतः क्रीड़ा का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि शरीर के प्रशिक्षण और सामूहिक सहयोग की भावना विकसित करना था।

व्यायाम का आध्यात्मिक पक्ष

वेदों में शरीर और आत्मा के संबंध को अत्यंत सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद (10/90) में कहा गया—

‘सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।’

यह पुरुष अर्थात् विश्वपुरुष सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। इससे स्पष्ट है कि शरीर भी उसी दिव्य पुरुष का अंश है। अतः उसका पोषण और परिशोधन ईश्वर की उपासना के समान है। व्यायाम से शरीर में जो स्फूर्ति, ओजस् और प्राणशक्ति उत्पन्न होती है, वही साधक के ध्यान और तप की शक्ति बनती है। इस प्रकार भारतीय व्यायाम संस्कृति का अंतिम लक्ष्य शरीर में निवास करने वाले आत्मा का अनुभव है।

निष्कर्षतः वेदोत्पन्न भारतीय शारीरिक व्यायाम संस्कृति केवल मांसपेशियों के विकास का विज्ञान नहीं, बल्कि जीवन की संपूर्ण साधना थी। यह संस्कृति हमें सिखाती है कि शरीर, प्राण, मन और आत्मा इन चारों का संतुलन ही पूर्ण स्वास्थ्य है। वेदों की यह शिक्षा आज भी प्रासंगिक है जब आधुनिक मानव मशीनों के बीच अपना नैसर्गिक संतुलन खो चुका है। यदि हम पुनः वेदों की इस प्राचीन व्यायाम परंपरा को अपनाएँ — योग, सूर्यनमस्कार, प्राणायाम, क्रीड़ा, श्रम और संयम, तो आधुनिक समाज में शारीरिक सुदृढ़ता, मानसिक शांति और आध्यात्मिक उन्नति का पुनर्जागरण संभव है।

□□□